Chap - 5

पंचम् अध्याय

'दिनकर के काव्य में सामाजिक-आर्थिक चेतना की अभिव्यक्ति'

पूर्ववर्ती अध्यायों में दृष्टिगत किया जा चुका है कि दिनकर ने भारतीय संस्कृति का बहुत ही सूक्ष्म व गूढ़ अध्ययन किया है । उनके चिंतन से विदित है कि वह भारत-भारतीयता से बहुत प्रभावित हैं । यहां के कण-कण से उन्हें लगाव रहा है । इस देश की भूमि पर सर्वस्व अर्पण करने वाला यह कवि जनमानस की चेतना को अपने काव्य में अभिव्यक्त न करे, यह सम्भव नहीं हो सकता । जो व्यक्ति भारतीय संस्कृति का इतना सूक्ष्म अध्ययन कर सकता है । फिर इस देश के समाज में व्याप्त दशा का वर्णन क्यों कर न करेगा ? संस्कृति व समाज एक दूसरे से संगुंफित हैं । एक दूसरे के बिना इनका कोई अस्तित्व नहीं । भिन्न-भिन्न युगों की परिस्थितियाँ कवि या लेखक की रचनाओं से ही जानी जा सकती हैं । दिनकर जैसा कवि इन सब परिस्थितियों से प्रभावित ही नहीं था, अपितु उसके प्रति पूर्णतया सजग भी था । कवि स्वयं ऐसी सामाजिक ,आर्थिक अवस्था से आक्रान्त रहा जिसके बीच लेखनी नहीं रोटी का सवाल उसके लिए महत्त्वपूर्ण था । रोटी और लेखनी के बीच दोलायित होता कवि उससे उभरकर पार्श्ववर्ती सामाजिक चेतना का सही अंकन करने में लगभग सफल हुआ है ।

दिनकर सैद्धांतिक रूप में उस सामाजिक चेतना के गायक हैं जो मूलत: भारतीय है । 'रश्मिरथी' की भूमिका इसका सुन्दर साक्ष्य उपस्थित करती है, जिसको पूर्ववर्ती अध्याय में दृष्टिगत किया जा चुका है । अंग्रेजी शासन से पीड़ित जनता भुखमरी व अकाल में पड़ी थी । ऐसी स्थिति में दिनकर का कवि हृदय हाहाकार न करे । यह उनके स्वभाव के विपरीत था । वे देश की आर्थिक पीड़ा तो अपनी असमर्थता के कारण दूर करने में असमर्थ ~~उन-के-कारण-दूर-करने-में~~ थे, किन्तु प्रेरणादायिनी, ओजस्विनी के रूप में उनकी उद्घोषक वाणी देशवासियों को जागरण का संदेश देने में काफी सीमा तक प्रभावशालिनी सिद्ध हुई है ।

समाज के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी कविता कामिनी, कुछ खोजती हुई, दु:ख तथा आक्रोश व्यक्त करती हुई घूमती रही है। आर्थिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने में उन्होंने अपनी राष्ट्रीयता का ही परिचय दिया है। अत: सामाजिक चेतना की आधार भूमि का संक्षिप्त विवेचन यहां प्रासंगिक है।

आधार भूमि :

दिनकर मूलत: राष्ट्रीयता और विद्रोह के कवि हैं। यद्यपि जिस समय उनका आविर्भाव हुआ, गांधीवाद का प्रभाव सर्वत्र व्याप्त था, किन्तु प्रारम्भ में उन्होंने गांधीवाद से यथेष्ट प्रभाव न ग्रहण कर क्रांति और विद्रोह की भावना से प्रेरणा ली है और अंगारों से गांधी की पूजा की है।[1] राजनीतिक धरातल पर गांधीवाद से सहमत न होकर भी उन्होंने गांधी के सामाजिक दर्शन को स्वीकार किया तथा समाज में व्याप्त विषमता, ऊंच-नीच के भेद भाव, पारिवारिक और वैयक्तिक कटुता, अभिशप्त दाम्पत्य जीवन, नारी की दयनीय दशा, शोषक और शोषित के अन्तर, मजदूर और किसान के जीवन की करुण गाथा अत्यन्त दारुण आर्थिक वैषम्य और मानवीय गुणों के अभाव को उनकी पैनी दृष्टि ने बहुत ही सूक्ष्मता से देखा-परखा और साथ ही इन्हें आलोचित-विश्लेषित भी किया। इस प्रकार यदि देखा जाय तो क्रांति और विद्रोह के कवि 'दिनकर' ने एक प्रकार से अपने निजी समाज-दर्शन को विकसित किया। जिसमें सामाजिक और आर्थिक विषमताओं का अत्यन्त करुण रूप उभरा है। यह करुण संवेदना प्रकारान्तर से उनके सामाजिक साम्य के दृष्टिकोण का द्योतक कहा जायेगा। ऐसा कहा जा सकता है कि दिनकर आजीवन गांधीवाद व मार्क्सवाद के बीच दोलायित होते रहे हैं। वस्तुत: इस समस्या का समाधान खोजने के लिए उन्होंने रश्मिलोक की भूमिका में लिखा है - 'जिस तरह मैं जवानी-भर इकबाल और रवीन्द्र के बीच झटके

खाता रहा । उसी प्रकार मैं जीवन भर गांधी और मार्क्स के बीच झटके खाता रहा हूं । इसीलिए उजले से लाल को गुणा करने पर जो रंग बनता है, वही रंग मेरी कविता का रंग है । मेरा विश्वास है कि अनन्तोगत्वा यही रंग भारतवर्ष के व्यक्तित्व का भी होगा ।'[2] इससे स्पष्ट है वे दोनों के बीच समन्वय के पक्ष-पाती हैं । वस्तुत: समाधान की खोज में ही उनका झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ था, पर चिन्तन के अनन्तर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारत का उद्धार और विकास मात्र मार्क्स के आधार पर नहीं हो सकता । गांधीवाद से मिला हुआ मार्क्सवाद ही भारतवर्ष के व्यक्तित्व को विकसित कर सकता है ।

यह कहा जा सकता है कि दिनकर के काव्य में प्रत्यक्ष रूप में मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव परिलक्षित नहीं होता, किन्तु सामाजिक विषमता और आर्थिक असंतुलन ने उन्हें बार-बार मार्क्स की ओर देखने की प्रेरणा दी । यह अवश्य है कि वे मार्क्सवाद के भौतिकवाद से पूर्णतया संतुष्ट नहीं थे । उन्होंने अपने आलोचना ग्रंथ 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त' में अपने विचार को स्पष्ट किया है । वे रोटी को ही जीवन का सर्वस्व नहीं समझते, वरन् मन और आत्मा की तृप्ति में भी विश्वास रखते हैं । सम्भवत: मार्क्सवाद में जीवन-मूल्यों की व्याप्ति उतनी नहीं है । इसीलिए डॉ० रामशिरोमणि 'होरिल' ने उन्हें मार्क्सवाद के स्थान पर प्रगतिवाद से जोड़ा है । इस सन्दर्भ में उनका यह कथन समीचीन कहा जा सकता है-'प्रगतिवाद में परिवर्तन की पुकार अथवा क्रांति की भावना, सामयिक समस्याओं के प्रति जागरूकता, यथार्थप्रियता, बौद्धिकता एवं व्यंग्य की भावना, सांस्कृतिक अभ्युदान, राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना, मानव-वादिता, प्रेम की सामाजिक महत्ता, नारी की स्वतंत्रता, शोषित का उद्धार एवं जनप्रिय, जीवनोपयोगी भावना का प्रसार सबके बीज निहित हैं । मार्क्सवाद इतनी विस्तृत

पट भूमि का प्रकाशन भी कर सकेगा या नहीं, इसमें सन्देह है ।[3] उपर्युक्त कथन दिनकर की काव्य-चेतना के सामाजिक और आर्थिक पक्ष पर यथेष्ट प्रभाव डालता है तथा वह प्रगतिवाद की व्यापक चेतना को रूपायित करता है ।

यदि 'दिनकर' की समग्र काव्य चेतना पर विचार किया जाय तो उसके दो पक्ष उभर कर सामने आते हैं- वैयक्तिक और समष्टिनिष्ठ । यह बात आश्चर्य-जनक है कि दिनकर की दोनों प्रकार की काव्य-चेतना का युगानुकूल विकास हुआ है । और उसमें कहीं भी अन्तर्विरोध नहीं पाया जाता । वैयक्तिक काव्य चेतना की चरम परिणति 'उर्वशी' में देखी जा सकती है और समष्टिगत काव्य-चेतना के स्फुलिंग प्राय: उनके समस्त काव्य में किसी न किसी रूप में विद्यमान है । यहां तक कि 'उर्वशी' भी उसके प्रभाव से मुक्त नहीं है ।

यह दृष्टिगत किया जा चुका है कि 'दिनकर' राष्ट्रीय भावना के कवि हैं, किन्तु उनके काव्य में सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति-जन्य भावनाओं का अभाव नहीं है । अपितु अन्योन्याश्रित हैं । वे नीर-क्षीर के समान एक ही हैं । इसी कारण दोनों को एक ही अध्याय में सन्निविष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है । जिससे उनके विचारों का स्पष्ट और भास्वर रूप सामने आ सके । यह इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि आज के युग में सामाजिक जीवन प्राय: अर्थ-व्यवस्था से अधिकांशत: प्रभावित है ।

दिनकर का कवि जनता, जनार्दन का कवि है । जनता के आर्तनाद, मूक रुदन, क्षुधा की पीड़ा, नग्नता, विवशता, सामाजिक विषमता, जातीय ~~क्षुद्र~~ क्षुद्र भावना के उत्पीड़न , जातिवाद की कूत, धर्म के नाम पर खून की होली की पीड़ा, साम्प्रदायिकता के अजगर, धर्मान्धता, मानवीय शोषण, उत्पीड़न

व करुणा आदि के स्वर प्राय: उनके काव्य में मुखरित हुए हैं । मानवता को अपमानित करने वाली विषम परिस्थितियों को देखकर दिनकर का कवि ललकार उठता है । हुंकार भरता है और मानो रण छेड़ने का आह्वान करता है । यह दूसरी बात है कि वह यथार्थ धरातल पर रण छेड़ नहीं पाता, पर अपने शब्द-वाणों से बड़े से बड़े धैर्यशाली को विचलित करने को सचेष्ट है । डॉ० तिवारी के अनुसार - 'दिनकर की आर्थिक एवं सामाजिक प्रगतिशील रचनाएँ बहुत मार्मिक सशक्त एवं प्रभविष्णु हैं । कहीं-कहीं तो व्यंग्य प्रखर हैं । कुछ उक्तियाँ हृदय को बेध देती हैं । दासता, शोषण, विषमता, धर्मान्धता जीर्ण-शीर्ण परंपरा सबका विरोध कवि ने किया है ।कवि ने देश-व्यापी आन्दोलन देखे । साम्प्रदायिकता के शिकार पीड़ितों को देखा । अर्धनग्न क्षुधाग्रसित कृषकों पर अत्याचार देखे । बिलखते शिशुओं की चीत्कार सुनी ।[4] करुणा से आर्द्र और प्रेरित होकर कवि कहने लगा -

लाखों क्रौंच कराह रहे हैं
जाग आदि कवि की कल्याणी
फूट-फूट तू कवि कण्ठों से
बन व्यापक निज युग की वाणी ।[5]

दिनकर कभी अपने आस-पास की परिस्थितियों से अनासक्त होकर चतुर्दिक परिव्याप्त असीम सौन्दर्य में अपने आपको भी निमज्जित कर देना चाहते हैं । पर उनका ज्वलनशील और अत्यन्त प्रबुद्ध मानस उन्हें इसमें डूबने नहीं देता । समष्टि चेतना से स्पन्दित और परिचालित उनकी काव्य-दृष्टि चारों और व्याप्त नग्न यथार्थ और जीवन की विभीषिका को अनुभव करके उसको मुखरित करने को विवश हो जाती है । इस द्वन्द्वात्मक स्थिति का कवि ने कितना मार्मिक अभिव्यंजन किया है -

मेरी भी यह चाह विलासिनी ! सुन्दरता को शीश झुकाऊं ।
जिधर, जिधर मधुमयी बसी हो, उधर बसन्तानिल बन धाऊं ।
झांकू उस माधवी-कुंज में, जो बन रहा स्वर्ग कानन में ।
प्रथम परस की जहाँ लालिमा, सिहर रही तरुणी आनन में ।।[६]

यह मन: स्थिति कवि की सामाजिक संवेदना के कारण प्राय: टूटती रही है। चारों ओर की अशांति, बुभुक्षा, पीड़न, विषमता आदि कवि के मानस को इस प्रकार मथित कर देते हैं कि वह सुकुमारता और सुन्दरता को विस्मृत करने के लिए विवश हो जाता है । अपनी लेखनी के कुठार को उठाकर उन्हें मिटाने की चेष्टा करता है । एक लम्बे समय तक वह अभावग्रस्त का सखा बना रहता है । यह दूसरी बात है कि उसका मानस सौन्दर्य, प्रेम, नारी की सुकुमार देह यष्टि को अपने में भर लेना चाहता है जिसे हम `रसवन्ती`, `नीलकुसुम`, `उर्वशी` आदि में देख पाते हैं । अन्यथा कवि का स्वत: स्फूर्त पौरुष ललकार कर मानो कहना चाहता है कि - `मुहुर्तमपि ज्वलनं श्रेय : न च धूमायितम् चिरम्` अत: उपर्युक्त तथ्यों के समग्रतया आकलन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रेम और सौन्दर्य की अन्तश्चेतना तथा सम-सामयिक सामाजिक-आर्थिक विषमताओं के आघात से प्रतिक्रिया रूप में प्रदीप्त भावोद्गार इन दोनों का एक सशक्त द्वन्द्व उनके समस्त काव्य में विद्यमान है जो कि पूर्ववर्ती अध्याय में प्रस्तुत उनके काव्य-विकास विषयक विवेचन में भी दृष्टिगत किया जा सकता है ।

दिनकर की सामाजिक चेतना :

कवि समाज का स्रष्टा और द्रष्टा दोनों होता है । वह अतीत की ओर देखकर भविष्य की सुखद आकांक्षा करता है । कवि `दिनकर` की अपने युग के प्रति सतत जागरूकता का निदर्शन पूर्ववर्ती पृष्ठों में किया जा चुका है । अत: समाज के

सजग प्रहरी व सचेष्ट कलाकार होने के नाते वे उसका यथार्थ और अभीप्सित चित्र खींचते हैं । उन्होंने अपने सम्मुख उपस्थित वर्तमान कालिक समाज की भौतिक प्रगति व उन्नति का चित्र तो खींचा ही है किन्तु इसके साथ उसकी विकृतियों के चित्रण में भी वे पीछे नहीं रहते । उन्होंने समाज में मनुष्य द्वारा हो रहे मनुष्य के शोषण, उत्पीड़न, दमन के साथ-साथ मनुष्य की संकुचित स्वार्थ-नीति, समाज में प्रचलित जाति-पाँति , वर्ण-भेद एवं वर्ग-भेद के झगड़े, वैज्ञानिक प्रगति और तज्जन्य विभीषिकाओं के परिणाम स्वरूप दिन-प्रतिदिन विघटित एवं विपन्न हो रहे मानव जीवन का वर्णन किया है ।[7] इतना ही नहीं, उसके प्रति संवेदनशील होकर अत्याचारों से कवि दिनकर मुक्ति पाने के लिए क्रांति का आह्वान करते हैं । वह इस वर्ग को मानवता का सबसे बड़ा दुश्मन समझते हैं । समाज के शोषित वर्ग के प्रति उनकी मात्र सहानुभूति ही नहीं अपितु वे उसे सुधारने के लिए क्रांतिकारी आवेश भी उनमें है । सामाजिक असमानता को मिटाने के लिए वे प्रयत्नशील हैं । उनके अनुसार क्रांति की आग ही इन विभीषिकाओं को मिटा सकती है । वह मानव समाज में व्याप्त प्राचीन रूढ़ियों का खण्डन अपने तरुणोचित तेज से भरपूर होकर करते हैं । वे इस ऊँच-नीच तथा भेद-भाव को समाज व राष्ट्र के लिए अहितकर मानते हैं । भाग्यवाद की धारणा से सामाजिक अन्याय दिन प्रतिदिन बढ़ता है । भाग्यवाद की इस हीन-भावना तथा रूढ़ियों के कारण भारत को इसका भयंकर परिणाम सहना पड़ा है । वे मानव के दुःख-सुख, राग-विराग विषमताओं से बुरी तरह आहत हुए हैं ।

कवि का निजी जीवन भी अस्तित्व के लिए सतत संघर्ष का साक्ष्य उपस्थित करता है । सम्भवतः इसीलिए वह पलायन का समर्थक नहीं है । न चाहते हुए भी उनकी लेखनी समाज के उसी वर्ग के इर्द-गिर्द घूमती रही जो कि देश का पिछड़ा वर्ग था ।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है - कि `दिनकर की उमंग और मस्ती में सामाजिक मंगलाकांक्षा का प्राधान्य है । इनके काव्यों में सर्वत्र सामाजिक अन्याय और विषमता के प्रति विरोध का स्वर है ।`[18]

दिनकर के समस्त काव्य में जो सामाजिक और आर्थिक स्थितियों का चित्रण हुआ है उसे सुविधा की दृष्टि से अनेक शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है - सामाजिक समानता, सामाजिक विकृतियाँ, साम्प्रदायिकता का विष, ग्राम्य-जीवन, की दीनता, वर्ग-संघर्ष, सामाजिक आर्थिक शोषण व देश वासियों की दुर्दशा । दिनकर के काव्य में इनकी अभिव्यंजना के आधार पर ही हम उनके सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण का मूल्यांकन कर सकते हैं ।

सामाजिक समानता :

भारत में समाज व्यवस्था के दो आधार रहे हैं - एक वर्ण-व्यवस्था से विकसित सामाजिक वर्ग या जाति तथा दूसरे अर्थ-व्यवस्था से निर्मित-वर्ग । वर्ण-व्यवस्था की भित्ति पर निर्मित जाति-भेद और तज्जन्य विषमता पर स्वयं `दिनकर` जी ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में विस्तार से विचार किया है और उसे हम यथा-स्थान निर्दिष्ट कर चुके हैं । सामाजिक साम्य की चेतना आधुनिक युग की विशेष देन है । पूर्ववर्ती काल का सांस्कृतिक पुनर्जागरण भी इसके प्रति पूर्णतया सजग और यत्नशील रहा । आज व्यावहारिक स्थिति जो भी हो, किन्तु समाज-विशेष या देश-विशेष के मानव-मात्र की एकता ही नहीं अपितु विश्व मानव की मान्यता वैचारिक जगत में प्रतिष्ठित हो चुकी है । महाकवि दिनकर मानव-मात्र की समानता के सबल समर्थक हैं । ऊँच-नीच के भेद-भाव को आज हीन दृष्टि से देखा जाता है । जबकि भारत वर्ष में प्राचीन काल से ही कबीर, तुलसी तथा बुद्ध व आधुनिक युग में स्वामी दयानन्द तथा महात्मा गांधी ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास करके मानव-मात्र की समानता प्रतिपादित की है ।

मैथिलीशरण गुप्त जी का युग नारी-उद्धार का युग था । दिनकर जी तक आते-आते नारी-शोषण थोड़ा कम हो गया था । समाज का पिछड़ा व दलित वर्ग इस युग में बुरी तरह शोषित हो रहा था । अत: दिनकर जी ने इस युग की समस्या- जाति-भेद को 'रश्मिरथी' काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है । 'रश्मिरथी' का कर्ण उन व्यक्तियों का प्रतीक है जो वर्ण-व्यवस्था की अमानवीय क्रूरता और जड़ीभूत मान्यताओं की विभीषिका के शिकार हैं । आधुनिक युग की यह एक ज्वलन्त समस्या है क्योंकि कुल और जाति व्यक्ति के विकास में बाधक या साधक बनते रहे हैं । जाति-व्यवस्था के कारण जर्जर और जड़ित भारतीय समाज में योग्य और कर्मठ व्यक्तियों के महत्त्व के प्रति सबकी अपेक्षा है । कर्ण इस प्रकार के अपेक्षित किन्तु पीड़ित जनों का आदर्श है -

मैं उनका आदर्श, जिन्हें कुल का गौरव तारेगा ।
नीच वंश जन्मा कहकर जिनको जग धिक्कारेगा ।
जो समाज की विषम वह्नि में चारों ओर जलेंगे ।
पग-पग पर झेलते हुए बाधा नि:सीम चलेंगे ।[६]

जाति-भेद के कारण समाज में विषमता तो आती ही है । साथ ही निम्न जाति में जन्म लेने वाला योग्य व्यक्ति अपनी प्रतिभा और क्षमता के समुचित विकास के अवसर से वंचित हो जाता है और दूसरी ओर उच्च जाति से सम्बद्ध अयोग्य और हीन मनोवृत्ति के व्यक्ति को महत्त्व मिलने के कारण समाज में न्यायोचित व्यवस्था नहीं खड़ी हो सकती है । इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति को श्रेयस्कर मार्ग में अग्रसर होने की प्रेरणा नहीं मिल पाती । फलत: जीवन-मूल्य अपने वांछनीय रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो पाते । दिनकर ऐसी परम्परा के उच्छेदन के लिए संकल्प शील से दिखाई पड़ते हैं । जातिवाद को कर्ण के माध्यम से चुनौती देते हुए वे कहते हैं कि -

जाति जाति रटते, जिनकी पूंजी केवल पाषण्ड ।
मैं क्या जानूं जाति ? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड ।
+ + +
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझमें तेज प्रकाश ।
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास ।[१०]

तात्पर्य यह है कि वे व्यक्ति की श्रेष्ठता को उसके निजी स्वत्व पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं । मानवता व सामाजिक-साम्य के पुजारी होकर वे ऐसे समाज की आशा करते हैं जहां पर -

ऊँच-नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है ।
दया-धर्म जिसमें हो, सबसे पूज्य वही प्राणी है ।
क्षत्रिय वही, भरी हो जिसमें निर्भयता की आग ।
सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप-त्याग ।[११]

कवि दिनकर उपर्युक्त मानवतावाद या सामाजिक साम्य के प्रति आस्थावान भी कहे जा सकते हैं । उनके अनुसार भविष्य में कभी न कभी वह दिन अवश्य आएगा, जबकि मानव-मानव एक हो जाएंगे । जाति, धर्म, रंग, वर्ण सभी समाप्त हो जाएंगे और मानव की पहचान मानवता होगी -

घृणा करो मत किसी मनुज से
क्योंकि भिन्न कुछ नहीं, हमीं प्रत्येक मनुज से हैं ।
--------------- वह अभितांशु आएगा ।
करेगा जो विभासित विश्व-मुख सारी मनुजता का ।[१२]

कवि जन-जीवन को उस ऊँचाई पर ले जाना चाहता है, जहां पहुँचकर मनुष्य दूसरा सूर्य बन जाता है । जहाँ मनुष्य सीमाहीन हो जाता है । सारी

क्षुद्रताएँ समाप्त हो जाती हैं और सारी मानवता एक दिखायी पड़ती है -

पाकर मनुष्य बन जाता है, दूसरा सूर्य,
निस्सीम लोक, जिसकी ऊँचाई पर चढ़कर
क्षुद्रता -हीनता पर न दृष्टि फिर उड़ती है
निस्सीम लोक जिसकी चोटी पर से
मानवता सारी एक दिखायी पड़ती है ।[१३]

उपरिनिर्दिष्ट सामाजिक साम्य और उदात्त व्यक्ति-चेतना के प्रबल समर्थक होने के कारण दिनकर जी ने अपने काव्य में समाज की उन विकृतियों पर तीव्र प्रहार किये हैं, जो समाज को टुकड़ों में बाँटती, उसे अधोगामी बनाती तथा व्यक्तियों को उदात्तता के पथ पर आगे बढ़ने से रोकती हैं । इस विरोध के लिए उन्होंने कभी तीखे प्रहार का सहारा लिया है, तो कभी व्यंग्य का, जैसा कि परवर्ती विवेचन से स्पष्ट है -

सामाजिक विकृतियां :

सर्वप्रथम यह उल्लेखनीय है कि `दिनकर` का ध्यान सामाजिक असमानता की ओर अधिक गया है । उनकी दृष्टि में मानव-मानव है, उसमें कहीं कोई भेद नहीं है । प्रकृति ने ~~सबका~~ सबका निर्माण एक ही तत्त्व से किया है तो मानव-मानव में अन्तर या भेद-भाव क्यों है ? छोटा या बड़ा क्यों है और किसी का स्पर्श मात्र भी गर्हित क्यों माना जाता है । इसी अस्पृश्यता के प्रश्न को लेकर उन्होंने `बोधिसत्त्व` कविता लिखी है । जिसमें अस्पृश्यता पर उन्होंने कसकर प्रहार किया है -

आज दीनता को प्रभु की पूजा का अधिकार नहीं,
देव ! बता क्या क्या दुखियों के लिए निठुर संसार नहीं !
धन-पिशाच की विजय, धर्म की पावन ज्योति अदृश्य हुई !
दौड़ो बोधिसत्व ! भारत में मानवता अस्पृश्य हुई ।[१४]

दिनकर का संवेदनशील मन इस बात को किस प्रकार स्वीकार कर सकता है कि देवता भी धनिकों का है । दीन, दलित उसके पास तक पहुंच ही नहीं पाते । इसी कारण व्यंग्यात्मक प्रहार द्वारा वे बताते हैं -

पर, गुलाब जल में गरीब के अश्रु राम क्या पाएंगे ?
बिन नहाए इस जल में क्या नारायण कहलाएंगे ?
मनुज-मेघ के पोषण दानव आज निपट निर्द्वन्द्व हुए ।
कैसे बचें दीन? प्रभु भी धनियों के गृह में बंद हुए । [१५]

आर्थिक व्यवस्था या अर्थ के विभाजन के आधार पर विकसित असमानता को समाज, जीवन की विकृति मानकर दिनकर गहरे से गहरे व्यंग्य करने में नहीं चूकते । उपर्युक्त पंक्तियाँ इस तथ्य को प्रमाणित कर देती हैं ।

गाँधी जी ने तथाकथित अस्पृश्य कही जाने वाली जाति को उसका स्वत्व दिलाने के लिए भरसक प्रयत्न किया । उन्हें मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए 'हरिजन' अभिधान देकर उनके चिर अभिशप्त स्वरूप को ही परिवर्तित कर दिया पर धर्म-रक्षा के तथाकथित पिशाचों ने क्या महात्मा गांधी की उच्चाशयता को प्रशंसनीय समझा ? उन्होंने तो स्वयं गांधी जी के अस्तित्व को भी मिटाने का प्रयास किया, किन्तु दिनकर हरिजनों को प्रेरणा देकर उन्हें नव जागृति का अभिनव संदेश देते हुए आमूल क्रांति का आह्वान करते हैं -

अनाचार की तीव्र आंच में अपमानित अकुलाते हैं ।
जागो बोधिसत्व ! भारत के हरिजन तुम्हें बुलाते हैं ।
जागो विप्लव के वाक् ! दम्भियों के इन अत्याचारों से ।
जागो, हे जागो, तप-निधान ! दलितों के हाहाकारों से । [१६]

सामाजिक असमानता का एक रूप यह है कि बुभुक्षा और दीनता से पीड़ित मानव-शिशु चिल्लाता है। वहीं दूसरी ओर संपन्न वर्ग दीन-दलित को प्रताड़ित करने से नहीं चूकता । यह सामाजिक अन्याय सर्वथा असह्य है । कवि करुणार्द्र वाणी में कहता है -

शिशु मचलेंगे दूध देख, जननी उनको बहलाएगी ।
मैं फाडूंगी हृदय, लाज से आँख नहीं रो पाएगी ।
इतने पर भी धनपतियों की उन पर होगी मार । [१७]

सारी सामाजिक असमानता को देखते हुए उससे पीड़ित और व्यथित कवि को आशा है कि एक दिन आएगा, जबकि जनता का क्रोध असह्य वेदना के भीतर से जाग उठेगा और सारी धरती धर्रा उठेगी -

हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती ,
सांसों के बल से ताज हवा में उड़ता है ,
जनता की रोके राह, समय में ताव कहाँ ,
वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है । [१८]

कवि की क्रान्तदर्शिता तथा विद्रोही चेतना का जो निदर्शन प्रस्तुत अध्याय के आरम्भ में किया गया है । वह उपर्युक्त - उक्तियों में साकार हुआ कहा जा सकता है । एतद्विषयक विकृतियों को अपने देश में प्रवर्तमान वस्तुस्थिति के सन्दर्भ में देखकर वे संवेदनशील होकर कहते हैं कि यह वही देश है जहां गौतम बुद्ध ने मानवता का, समता का, और करुणा का पाठ सिखाया है । उसी देश में भाई- भाई के प्रति रोष, भाई को नीच-हीन, अस्पृश्य समझना, उसकी छाया से पलायन करना कितना घोर पतन है । मानवता के इस अभिशाप के प्रति कवि दिनकर ने अपना आक्रोश व्यक्त किया है -

शबरी के जूठे बेरों से आज राम को प्रेम नहीं ।
मेवा छोड़ शाक खाने का याद पुरातन नेम नहीं ।

इस सन्दर्भ में वे अपने युग की स्थिति के प्रति भी जागरूक हैं । मैकडॉनाल्ड ने जब हरिजनों को सवर्ण हिन्दुओं से पृथक समझे जाने का निर्णय दिया । उस समय गांधी जी ने अनशन आरंभ कर दिया । उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगा दी क्योंकि वे हरिजनों को सवर्ण हिन्दू समाज से पृथक नहीं समझते थे । कवि करुणा-द्रवित स्वर में उस मौन तपस्वी की किस प्रकार स्तुति करता है -

भूखे नंगे दीन बन्धुओं
पर लख अत्याचार
दीन बन्धु की आँखों से
फूटी करुणा की धार ।[२०]

इस प्रकार दिनकर के पूरे काव्य में यत्र-तत्र सामाजिक असमानता के चित्र खींचे गये हैं जो उसके संतुलित एवं क्रान्तदर्शी सामाजिक दृष्टि को भी रूपायित करते हैं । इसके साथ ही यहां यह ध्यातव्य है कि आलोच्य कवि की रचनाओं में उसके दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति में सामाजिक विकृतियों के प्रति जो आक्रोश का स्वर है, वह आधुनिक युग की सांस्कृतिक अधोगामिता को प्रकाशित करता है । भारतीय संस्कृति ने वर्ण- व्यवस्था को स्वीकार करके भी सामाजिक-साम्य तथा मानव-मात्र की एकता को ही मूलत: प्रतिष्ठित किया था तथा गुण-कर्म के अनुसार व्यक्ति की निजी विशेषताओं को तत्सम्बंधी वर्ण के रूप में माना था । 'रश्मिरथी' में कर्ण के वक्तव्य के माध्यम से जाति-भेद का विरोध करके उसके गुण-कर्म की मान्यता का जो प्रतिपादन किया है, वह इसे प्रमाणित करता है । उत्तर वैदिक काल के

बाद से क्रमशः वर्ण का जाति के माध्यम से निर्धारण और कालान्तर में इसका जाति-भेद में विकास सामाजिक विषमता की ओर उन्मुख होता हुआ मध्यकाल में विषमता तथा तद्गत विकृति को अधिक व्यापक बनाता गया । सांस्कृतिक अधःपतन की यह विरासत आधुनिक युग को मिली और आधुनिक युग के सांस्कृतिक पुनर्जागरण ने सामाजिक साम्य की उक्त चेतना के नये सन्दर्भों में जगाने का प्रयास किया, जिसे हम यथास्थान पूर्ववर्ती अध्यायों में दृष्टिगत कर आये हैं । `दिनकर` के काव्य में प्राप्त होने वाला एतद्विषयक दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि वे विचार और अनुभूति के स्तर पर उक्त चेतना की पुनर्प्रतिष्ठा के आकांक्षी या संकल्पशील हैं । प्रश्न यह उठता है कि इस प्रतिष्ठा में उन्होंने पौराणिक आख्यानों का सहारा क्यों लिया है ? इस विषय में यह कहा जा सकता है कि एक तो कवि सांस्कृतिक परंपरा के प्रति किसी न किसी रूप में आस्थावान है तथा दूसरे भारतीय जन-मानस में परंपरा के प्रति गहरी आस्था के विद्यमान होने के ~~नथ्य~~ तथ्य को देखते हुए वह प्राचीन कथानकों की नयी व्याख्या द्वारा उसकी विकृत मानसिकता को संस्कारित करना चाहता है ।

<u>साम्प्रदायिक विष :</u>

सामाजिक विकृति का बहुत ही गंभीर साक्ष्य भारतीय जन-जीवन में व्याप्त साम्प्रदायिक वैमनस्य है । अंग्रेजों ने अपने शासन की मजबूत नींव के लिए इस बीज का वपन किया था । इसका दुःखद परिणाम हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों ने उठाया । वास्तव में यह गरल इतना घातक सिद्ध हुआ कि इसने भारत-जननी के हृदय को तो टुकड़ों में बाँट ही दिया, पर मानवीय सद्भाव और करुणा को जो आघात पहुंचा, उसे भूला नहीं जा सकता ।सन् १९३८ में दिनकर ने `तकदीर का बंटवारा` कविता लिखी थी । जिसमें हिन्दू-मुस्लिम के वैमनस्य के विष को देखकर कवि का मन लज्जा और क्रोध से भर उठा -

हाथ की जिसकी कड़ी टूटी नहीं,
पाँव में जिसके अभी जंजीर है ।
बाँटने को हाय ! तोली जा रही,
बेहया उस कौम की तकदीर है ।
+ + +

मुस्लिमों, तुम चाहते जिसकी जबाँ !
उस गरीबिन ने जबाँ खोली कभी ?
हिन्दुओ, बोलो, तुम्हारी याद में ।
कौम की तकदीर क्या बोली कभी ।[२१]

कालान्तर में राष्ट्र के विभाजन पर इस विष ने और भी विकराल रूप धारण कर लिया । पंद्रह अगस्त १९४७ को भारत माता के हृदय के टुकड़ों के आधार पर आजादी मिली । वह वास्तव में आजादी न थी बल्कि वह तो साम्प्रदायिकता के विषैले दंशों का परिणाम था जो मानवता को समाप्त कर चुकी थी । विभाजन की इस गर्हित प्रतिक्रियाओं ने नर को पशु से भी हीन बना दिया । पुरुष की नृशंस पशुता का शिकार नारी बनी । नारी की लज्जा का ऐसा निर्वसन रूप शायद ही कहीं देखने में आया हो । ऐसे समय में दिनकर जी बापू को केशव के समान मानकर यह कह उठे -

बापू ! तू कलि का कृष्ण,
विकल आया आँखों में नीर लिए ।
थी लाज की द्रौपदी की जाती,
केशव सा दौड़ा चीर लिए ।[२२]

इस साम्प्रदायिकता की भीषण आग में गांधी जी निःशंक घूमते रहे -

थी पड़ी दृष्टि पहले भी क्या,
तेरी ऐसे नर वामी पर
जो खुले पाँव निःशंक घूमता
हो साँपों की बामी पर । [२३]

नोआखाली और बिहार के हिन्दू- मुस्लिम दंगों से पीड़ित कवि की मर्मवेदना किस प्रकार मुखरित हो उठी है -

जलते हैं हिन्दू मुसलमान ।
भारत की आँखें जलती हैं ।
आने वाली आजादी की
लो । दोनों पाँखें जलती हैं । [२४]

साम्प्रदायिकता किसी भी राष्ट्र या उसकी संस्कृति को किस प्रकार बाँटती या विकृत करती है, इसका साक्षी भारत-विभाजन की घटना है । संस्कृति के विचारक के नाते कवि दिनकर इसे भारतीय परंपरा के विरुद्ध मानते हैं । उनकी स्पष्ट मान्यता इन पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई है -

जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है ।
देश-देश में खड़ा वहाँ भारत जीवित, भास्वर है । [२५]

साम्प्रदायिक तनाव की बात पर विचार करने के साथ-साथ कवि इस बल बात पर विचार करने के साथ-साथ कवि इस बात पर भी विचार करता है कि यह संभव है कि यह तनाव कम हो और अल्पसंख्यकों तथा बहुसंख्यकों के मध्य प्रेम-पीयूष प्रवाहित हो सके । दिनकर जी यह मानते हैं कि अल्प संख्यकों का भार शासन पर अवश्य है पर सामाजिक अनुशासन दोनों के लिए आवश्यक है, जिससे स्वतः सद्भाव और समता का उदय हो सकता है ।

ग्राम्य जीवन की दीनता :

स्वतंत्रता के आगमन से देशवासियों को विश्वास रहा कि देश का दैन्य और अभाव दूर होगा तथा वह सुख-समृद्धि की सुखद नींद में सो सकेगा, परन्तु यह सब सपना ही सिद्ध हुआ। पंचवर्षीय योजनाओं तथा अन्य साधनों द्वारा देश के विकास के लिए प्रयास किये गये। कुछ योजनाएं सफल हुईं। उनका प्रतिफल कुछ सीमित और स्वार्थ-साधन में लीन लोगों तक ही रह गया। सामान्य जनता को कुछ भी लाभ न हो सका। कवि दिनकर ने समाज के इन दोनों पक्षों की ओर अपनी दृष्टि डाली है। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप ग्राम्य और नगर जीवन की इस बढ़ती खाई को उन्होंने स्पष्ट रूप से परिलक्षित किया है। अपनी 'दिल्ली' कविता में इन द्विविध स्थितियों का मर्मस्पर्शी चित्र उन्होंने अंकित किया है। इसी संकलन की 'हक की पुकार' शीर्षक कविता में कवि ने गांवों के किसानों का दैन्य-जड़ित चित्र प्रस्तुत किया है -

मन की उमंग पर जंजीरें,
तन ऊपर एक लंगोटी है,
आँखें गड्ढे में धंसी हुईं।
हाथों में सूखी रोटी है।[२६]

उनका कहना है यदि गाँवों को आबाद करना है और यदि वहाँ के करुण नाद को दूरकर अंधकार को मिटाकर प्रकाश लाना है, तो दिल्ली के बनाव-सिंगार, विलासिता, वैभव के चाक चिक्य को कम करना होगा -

दिल्ली की सारी चमक-दमक,
यह लोच लचक सब झूठी है।
रेशम पर पड़ती हुई रोशनी
की लकदक सब झूठी है।

झूठा है ये सारा बनाव
झूठे ये महल अटारी हैं ।
तुम यहाँ फूँकते हो वंशी,
गाँवों में नालें जारी हैं ।
आने दो इन आवाजों को,
मत एक राह भी बन्द करो ।[२७]

प्रस्तुत कविता `दिल्ली` आधुनिक नगरों का प्रतिनिधित्व करती है । और साथ ही देशवासियों को संतुलित विकास का संदेश देकर उक्त विषमता के प्रति आक्रोश को भी वाणी देती है । इसी संग्रह में कवि ने `भारत का यह रेशमी नगर` कविता में दिल्ली के वैभव और भारतीय जन-जीवन की दु:ख, पीड़ा की विरोधात्मक स्थिति पर अत्यंत कठोर व्यंग्य किया है -

हो गया एक नेता मैं भी ? तो बंधु सुनो,
मैं भारत के रेशमी नगर में रहता हूँ ।
जनता तो चट्टानों का बोझ सहा करती,
मैं चाँदनियों का बोझ किस विध सहता हूं ।[२८]

दिल्ली और वास्तविक भारत का चित्र क्या है । कवि इस अन्तर को स्पष्ट बताता है -

भारत धूलों से भरा, आँसुओं से गीला,
भारत अब भी आकुल विपत्ति के घेरे में ।
दिल्ली में तो है खूब ज्योति की चहल-पहल ।
पर भटक रहा है सारा देश अंधेरे में ।
+ + +
चल रहे ग्राम कुंजों में पछियाँ के झकोर ।

दिल्ली लेकिन ले रही लहर पुरवाई में ।
है विकल सारा देश अभाव के तापों से ।
~~दिल्ली लेकिन ले रही लहर पुरवाई~~
दिल्ली सुख से सोई है नरम रजाई में ।[२९]

अंतिम पंक्तियों में ग्राम जीवन के अर्थाभाव को पछुवा हवा के माध्यम से और नगरों की समृद्धि को पुरवाई के प्रतीक से प्रस्तुत करते हुए कवि ने अपनी राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त किया है । वह देखता है कि सामान्य जनता को कोई सहारा नहीं है, जो उसका त्राता कहा जाता है, वही उसका शोषक भी है । अमर लता के समान ही दिल्ली भी शोषण पर ही पोषित है । समग्र भारत का शोषण उसके वैभव का आधार है -

निर्धन का धन पी रहे लोभ के प्रेत छिपे ।
पानी विलीन होता जाता है रेतों में ।
+ + +
दिल्ली भारत की अमर लता
ऊपर -ऊपर छाने वाली
मिट्टी में जड़ को फेंक नहीं,
उस का प्रसाद पाने वाली ।[३०]

कवि दिल्ली को व उसके नेताओं को चेतावनी देता है कि यह दशा बहुत दिनों तक नहीं चल सकेगी । यदि राजनेता इस वैषम्य को दूर नहीं करेंगे तो जनता आगे बढ़कर चारों ओर छाये हुए इस जादू के मोह को स्वयं तोड़ डालेगी । तब दिल्ली भी भारत का ही एक अंग होगा -

ऐसा टूटेगा मोह, एक दिन के भीतर,
इस राग रंग की पूरी बर्बादी होगी ।
जब तक न देश के घर घर में रेशम होगा ।
तब तक दिल्ली के तन पर खादी होगी ।[31]

स्वतंत्रता से पूर्व दिल्ली का जो चित्र कवि ने अंकित किया है वह भी कम मार्मिक नहीं है । उस समय देश परतंत्र था । अत: दिल्ली का विलासिनी का रूप स्वाभाविक था । पर स्वतंत्रता के उपरान्त भी उसका वह रूप परिवर्तित नहीं हुआ । वरन् उसमें कुछ वृद्धि ही हुई है । इसकी मर्मभरी वेदना कवि में विद्यमान है और वह स्वतंत्रता पूर्व की दिल्ली को कृषक मेघ की रानी का अभिधान देता है ।[32] कवि 'तब भी आता हूँ' कविता में अपना यह विश्वास प्रकट करता है कि यद्यपि भारत दीन तथा धूल-धूसरित है, पर विवश नहीं है । कभी न कभी वह संघर्ष के पथ पर उतर आएगा और विनय से उसे जो प्राप्त नहीं हो सका है उसे वह पराक्रम से प्राप्त करेगा ।[33] इतना होने पर भी कवि समाज के नवोन्मेष के प्रति आशान्वित है -

छिलके उठते जा रहे, नया अंकुर मुख दिखलाने को है ।
यह जीर्ण तनोवा सिमट रहा, आकाश नया आने को है ।[34]

यह विषमता जब तक दूर नहीं होगी, तब तक दीन-दलितों का साम्य-यज्ञ निरंतर चलता रहेगा -

है शेष यज्ञ जब तक अशेष हतभागों का ।
शिंजिनी धनुष की तब तक नहीं नरम होगी ।
शीतल होता जब तक जन-मन का ताप नहीं ।
वंशी के उर की आग कहाँ से कम होगी ।[35]

ग्राम्य और शहरी जीवन की विषमता कितनी गहरी है यह कैसा सामाजिक न्याय है । जीवन का रूप कितना कुत्सित है इसे 'दूसरा स्वर' शीर्षक कविता में प्रस्तुत किया गया है ।[३६]

कवि की स्पष्ट धारणा है कि जब तक यह वैषम्य समाप्त नहीं होगा, तब तक मानव का सही रूप प्रतिष्ठित न हो सकेगा ।[३७] साम्य की ही कवि को चाह है, वही साधन है, जिससे मानव जीवन का कलुष प्रक्षालित हो सकेगा -

शांति नहीं तब तक, जब तक ।
सुख-भाग न नर का सम हो ।
नहीं किसी को बहुत अधिक हो ।
नहीं किसी को कम हो ।[३८]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कवि दिनकर ग्राम्य और शहर जीवन के समान एवं संतुलित उत्कर्ष को राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक मानते हैं । ग्राम व शहर की विषमता को बताकर वे भविष्य के प्रति आशान्वित हैं कि कभी तो देश में ऐसी सामंजस्यपूर्ण स्थिति अवश्य आएगी, जब भारतवासी सच्चे अर्थों में स्वतंत्र कहला सकेंगे । स्वातंत्र्योत्तर काल में औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप नगर और ग्राम संस्कृति का जो द्वन्द्व क्रमश: विकसित हो गया उसे भी उपर्युक्त उद्धरणों में लक्ष्य किया जा सकता है । आर्थिक सन्दर्भों में गाँवों में आर्थिक विकास के अभाव के साथ दिल्ली के वैभव से जगमगाते दृश्यों पर जो कवि ने आक्रोश व्यक्त करते हुए राजनेताओं को जो चेतावनी दी है वह प्रकारान्तर से उनकी संवेदनशीलता से नहीं द्योतित करती अपितु गाँवों की आर्थिक ~~विपन्न~~ विपन्नता की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करके नव-जागरण का भी आकांक्षी है ।

वर्ग - संघर्ष :

पूर्ववर्ती विवेचन में हम लक्ष्य कर चुके हैं कि भारतीय समाज अर्थ-व्यवस्था या वितरण के आधार पर भी चिरकाल से बँटा हुआ है । इसके कारण ऊँच-नीच का भेदभाव पहले की भाँति आज भी वर्तमान है तथा हित-स्वार्थों के कारण शोषण और संघर्ष की स्थितियाँ भी लम्बे समय से दिखायी पड़ती हैं । दिनकर जी एक विचारक के रूप में इस तथ्य को अपने विवेचन में प्रकाशित कर चुके हैं जिसे हम यथास्थान दृष्टिगत कर चुके हैं । इसके साथ ही वे जीवन के इस यथार्थ के प्रति कवि रूप में उतने ही संवेदनशील भी हैं । उन्होंने बहुत ही सूक्ष्मता और संवेदनशीलता के साथ भारतीय जीवन की रग-रग को देखा- परखा और पहचाना है । औद्योगिकरण के साथ पूरे विश्व में शोषण की प्रवृत्ति को प्रश्रय मिला और दो वर्ग विश्व-समाज में उभरकर आये हैं - शोषक और शोषित । भारत में भी औद्योगिकरण के साथ दोनों वर्गों का उदय हुआ । पर इसके साथ ही यहाँ जमींदारी की प्रथा में इसी प्रकार की शोषण की प्रवृत्ति पायी जाती है । दिन-रात मेहनत करता है कृषक किन्तु उसका सारा फल या तो जमींदार ले जाता है या वे छोटे-मोटे सेठ साहूकार । जिसका अत्यन्त सटीक विश्लेषण प्रेमचन्द्र जी ने 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक निबंध में किया है । दिनकर जी ने किसानों का जो चित्र अंकित किया है वह रोमांचक और करुण ही नहीं, अपितु उपर्युक्त शोषण को प्रकाशित करता है -

मुख में जीभ, शक्ति भुज में, जीवन में सुख का नाम नहीं है ।
बसन कहाँ ? सूखी रोटी भी मिलती दोनों शाम नहीं है ।
विभव स्वप्न से दूर, भूमि पर यह दु:खमय संसार कुमारी ।
खलिहानों में जहाँ मचा करता है हाहाकार कुमारी ।
बैलों के ये बंधु, वर्ष भर क्या जानें , कैसे जीते हैं ।
पर शिशु का क्या हाल, सीख पाया न अभी जो आँसू पीना ।
चूस, चूस सूखा स्तन माँ का सो जाता रो विलाप नगीना ।
अपना रक्त पिला देती यदि फटती आज वज्र की छाती ।[३९]

यहाँ वर्ग-संघर्ष की भावना को जगाया नहीं गया है , किन्तु यथार्थ बोध को अत्यन्त तीव्र बनाया गया है । जिसकी चरम परिणति संघर्ष में ही होती है । 'हाहाकार' कविता में यह ज्वलन्त रूप में प्रकट हुई है -

कब्र-कब्र में अबुध बालकों की भूखी हड्डी रोती है ।
'दूध-दूध' की कदम-कदम पर सारी रात सदा होती है । [४०]

इस दयनीय स्थिति को देखकर कवि हुंकार भर उठता है -

हटो व्योम के मेघ पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं ।
दूध-दूध ओ वत्स ! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं । [४१]

हुंकार भरकर कवि ने वर्ग-संघर्ष को टाला है और दूध की खोज के लिए कल्पना व्योम में विचरण किया है । क्रान्ति का अग्रदूत होते हुए भी दिनकर के कवि ने सीधे शोषक और शोषित के संघर्ष को बढ़ावा न देकर उक्त विषमता को रूपायित किया है -

युवती के लज्जा वसन बेच जब व्याज-चुकाये जाते हैं ।
मालिक जब तैल-फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं । [४२]

नीलकुसुम में कवि शोषक-वर्ग को अपने लक्ष्य में रखकर उन पर अपने शब्द-बाण का प्रहार करता है । 'काँटों के गीत' में कवि ने साफ-साफ चुनौती दी है कि शोषक-वर्ग जो बेपनाह लोगों के खून की होली मना रहा है, उसे उसको व्याज-सहित चुकाना पड़ेगा । उसका सब कुछ जाएगा और उसके पापमय तप के फल का भोग दूसरे करेंगे -

कहो कि जैसे उड़ी कलंगियाँ
जैसे उड़े जरी के जामे,
बेपनाह जिस तरह रहे उड़े ।
राजा के मुकुट हवा में ।
उसी तरह ये नोट तुम्हारे ।
पापी ! उड़ जाने वाले हैं ।
तप भी मारा गया , माल भी
और लोग पाने वाले हैं । [४३]

'नींव का हाहाकार' कविता ने शोषित के सामने वह उग्र सत्य रखा है, जिसे सुनकर वे काँप उठते हैं । कवि का कहना है कि शोषितों ने शोषण के बल पर जो महल खड़ा किया है । उसकी ईंट से ईंट दलित-दु:खित और शोषित की आवाज आती है । जो उन्हें कभी चैन नहीं लेने देगी । [४४] 'परशुराम की प्रतीक्षा' में भी कवि इस वर्ग-संघर्ष को दूर करने का आह्वान करता है । वह कहता है जब तक यह विषमता रहेगी । देश कभी ऊँचा नहीं उठ सकता । इसलिए इस विष-वृक्ष का उन्मूलन अनिवार्य है -

सबसे पहले यह दुरित मूल काटो रे ।
समतल पीटो, खाइयाँ खड्ड पाटो रे ।
वैषम्य घोर जब तक शेष रहेगा ।
दुर्बल का ही दुर्बल यह देश रहेगा । [४५]

उपर्युक्त विवेचन के अन्तर्गत कवि दिनकर की कृतियों के आधार पर वर्ग-संघर्ष की स्थिति पर जो विचार किया गया है । उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे ऐसी आर्थिक विषमता के प्रति अधिक संवेदनशील हैं तथा विद्रोही कम हैं । इनमें वर्ग- संघर्ष की अपेक्षाकृत वर्ग- चेतना का निदर्शन अधिक स्पष्ट है । इन दोनों स्थितियों के कारण जो सामाजिक तथा आर्थिक शोषण देश के जन-जीवन

में व्याप्त है, उसे उन्होंने युगीन संदर्भ के साथ-साथ ऐतिहासिक संदर्भों में भी देखकर अपनी संवेदना का विषय बनाया है। जिस पर विवेचनगत सुविधा की दृष्टि से स्वतंत्र रूप से विचार किया जा रहा है।

सामाजिक -आर्थिक- शोषण :

सामाजिक और आर्थिक शोषण के प्रति कवि दिनकर ने लगभग अपनी समस्त रचनाओं में आक्रोश प्रकट किया है। वह अपनी निर्भीक वाणी में वर्तमान अर्थ-प्रधान व्यवस्था तथा दानवी महाजनी सभ्यता का चित्रण करने के साथ ही साम्य की मधुर झंकार में भविष्य की आहट सुनते हैं। कवि ने अपनी आँखों से देश में हो रहे आंदोलन देखे। क्षुधाग्रस्त पीड़ित , दीन कृषकों की दयनीय हालत देखी। एक ओर दिल्ली जो राजमद और धन के विलास में डूबी है, उसको देखा। यह सब देखकर दिनकर का कवि-मानस चुप कैसे रह सकता था ? सामाजिक विषमता, धनियों द्वारा निर्धन का शोषण-दासता, धर्मान्धता, जीर्ण-शीर्ण परंपरा आदि को वे व्यंग्य से खंडित करते हैं। अर्थ-वैषम्य को वे मानवता के लिए घातक मानकर दलितों के उद्धार के लिए 'बोधिसत्व' का आह्वान करते हैं -

धन-पिशाच की विजय, धर्म की पावन ज्योति अदृश्य हुई।
दौड़ो बोधिसत्व। भारत में मानवता अस्पृश्य हुई।
\+ \+ \+
अनाचार की तीव्र आंच में अपमानित अकुलाते हैं।
जाओ बोधिसत्व। भारत के हरिजन तुम्हें बुलाते हैं।[४६]

कवि दिनकर कार्ल-मार्क्स की इस विचारधारा के समर्थक हैं कि अपने अधिकारों के लिए लड़ना और अत्याचारों को न सहना ही प्रत्येक शोषित-पीड़ित व्यक्ति का धर्म है। उनके विचार से समाज की अर्थ-प्रणाली पर ही व्यक्तियों का सुख-दु:ख बहुत कुछ निर्भर है।

कवि ने धनियों द्वारा दीनों को अन्न-वस्त्र छीन छीन लिए जाने,अपमानित, दनुजों द्वारा उनके रक्त चूसे जाने के लिए अपमानित और लांछित देखा है। व्याज चुकाये जाने के लिए स्त्रियों के लज्जा वसन बिकते व शिशुओं को दूध के लिए श्वानों से बुरी गति में आकुल मरते देखा है।[47] इसलिए उनका खून खौल उठता है। जिस व्यवस्था में नारी की लज्जा तक को महत्त्व नहीं दिया जाता, उस बर्बर व्यवस्था को समाज से उखाड़ फेंकना चाहिए। इसलिए कवि सिंह-गर्जना के साथ अपना विरोध प्रकट करता है-

लपटों से लाज ढको, कहाँ हो, धधको, धधको घोर अनल ?
कब तक ढक पाएंगे इसको रमणी के दो छोटे करतल ?
नारी का शील गिरा खंडित, कौमार्य गिरा लोह-लुहान।
भगवान भानु जल उठे क्रुद्ध, चिंग्घार उठा यह आसमान।[48]

उक्त शोषण के सैद्धांतिक तथा ऐतिहासिक पक्षों पर पूर्ववर्ती पृष्ठों में विचार किया जा चुका है। साहूकार द्वारा निर्मम और अवांछनीय शोषणको व्यक्त करने वाली उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं -

ऋण में संपद गयी सिर्फ दो बीघा भूमि थी हाथ।
+ + +
सात पुश्त तक सेकर पुरखे हुए निहाल।
उस माता को आज बेच दूं ? मैं ऐसा कंगाल ?
अगले मास चला मैं रोता, छोड़ धरा और धाम।
झूठे ऋण का हुआ मुकदमा, जमीं हुई नीलाम।
जग में जिसे बहुत है उसको ही न कभी संतोष।
राजा का कर सदा चुकाता, कंगालों का कोष।[49]

जैसा कि निर्दिष्ट किया जा चुका है कि वे यह भलीभाँति समझते हैं कि जब तक देश का आर्थिक संतुलन ठीक न होगा समाज का नव-निर्माण नहीं हो सकता । ऐसे शोषित मानव देश में स्वतंत्रता, समता व बंधुत्व के महत्त्व को समझ ही कैसे पायेंगे । यदि पेट में भूख है तो मानव कुछ भी कर सकता है । इसलिए वे फिर से साम्यवाद की ओर आकृष्ट होते हैं , परन्तु चाहते यह हैं कि समाज में यह गहरी खाइयाँ पट जायँ तो देश को आजादी मिलन मिलने में सरलता होगी क्योंकि विषमता की इस पीड़ा से परतंत्रता की पीड़ा अधिक कष्टप्रद है । यही वह स्थल है जहाँ दिनकर के विचार साम्यवादियों के पूर्णतया अनुगामी नहीं कहे जासकते । साथ ही यह पहले भी लक्ष्य कर चुके हैं कि वे विषमता के प्रति विध्वंसात्मक दृष्टिकोण न अपनाकर प्रधानतया संवेदनशील हैं । वस्तुत: यह कवि की सामंजस्य मुखी दृष्टि का ही प्रतिफल है । कवि `अरुण देश की रानी` लाल क्रांति के महत्त्व से अपरिचित नहीं । वह जानता है कि इसमें न केवल प्रजातंत्र बल्कि स्वतंत्रता, समता तथा बंधुता का संदेश निहित था और साम्यवादियों की वर्ग-संघर्ष की नीति इससे मेल नहीं खाती । वर्ग-संघर्ष के स्थान पर वे क्रांति के समर्थक हैं । यह अवश्य है लालक्रान्ति के वरेण्य पक्ष को वरदान के रूप में स्वीकृति भी प्रदान करते हैं । अत: कवि की दृष्टि को भारतीय कहा जा सकता है और संभवत: इसीलिए वह इस लाल-क्रांति में काली, भवानी और शिवा का रूप दर्शन करते हैं -

जय विधायिके अमर क्रान्ति की ! अरुण देश की रानी,
रक्त कुसुम धारिणी ! जगतारिणी ! जय नव शिवे, भवानी,
अरुण विश्व की काली, जय हो ।
लाल सितारों वाली! जय हो ।
दलित बुभुक्षु, विषण्ण मनुज की ।
शिखा रुद्र मतवाली, जय हो ।
जगत ज्योति, जय-जय, भविष्य की राह दिखानेवाली ।
जय समत्व की शिखा, मनुज की प्रथम विजय की लाली । [५०]

कवि लाल क्रांति के उपर्युक्त निदर्शन में भी वर्ग- संघर्ष पर बल न देकर समत्व के संचार का आकांक्षी है, किन्तु रेणुका में संकलित 'ताण्डव', 'कविता की पुकार', कविताओं में कवि सम्पत्ति के वैयक्तिक अधिकार को ध्वंस करने की माँग करके भी सामाजिक वैषम्य के मूल कारण वैभव के निरर्थक अभिमान पर प्रहार करता है-

गिरे त्रिभव का दर्प चूर्ण हो।
लगे आग इस आडम्बर में।
वैभव के उच्चाभिमान में,
अहंकार के उच्च शिखर में।
स्वामिन्! अन्धड़-आग बुला दो
जले पाप जग का क्षण भर में।[५१]

अत: समग्रतया मूल्यांकन के आधार पर इस तथ्य को लक्ष्य किया जा सकता है कि दिनकर जी भारतीय संस्कृति की साम्य और समन्वयवादी चेतना के ही समर्थक एवं उद्गाता प्रतीत होते हैं। उनकी 'विपथगा' कविता में नये समाज के निर्माण का आग्रह भी सांस्कृतिक चेतना का ही निदर्शक है -

रच दो इसे फिर से विधाता, तुम सत्य, शिव और सुन्दर।[५२]

देशवासियों की दुर्दशा :

प्रारंभ से ही यह लक्ष्य किया जा चुका है कि 'दिनकर' राष्ट्रीय भावना के कवि हैं और यह राष्ट्रीय-भावना विभिन्न संदर्भों तथा आर्थिक और सामाजिक जीवन-पक्षों से संवेदनशील होकर कालानुसरण की क्षमता के साथ गतिशील हुई है। देशवासियों की दुर्दशा के प्रति उनकी गहरी संवेदना उक्त राष्ट्रीय भावना का एक अंग कही जा सकती है। उनकी 'हिमालय' कविता ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक संदर्भों के साथ-साथ युगगत दुरवस्था का भी चित्र उपस्थित करती है।[५३]

स्वतंत्र भारत के बिखरे रूप का भी चित्रण करने से कवि नहीं चूका है -

राम जानें, भीतर क्या बल है ।'
तब भी बखूबी यह देश रहा चल है ।'
गण-जन किसी का न तंत्र है ।
साफ बात यह है कि भारत स्वतंत्र है ।[५४]

यहाँ कवि ने उस स्वतंत्रता पर प्रहार किया है जो अराजकता की ओर उन्मुख है, जिसने सबको स्वछंद बना दिया है । जबकि कोई भी राष्ट्र अनुशासित रहकर ही आगे बढ़ सकता है । स्वतंत्र भारत से कवि को कितनी आशा थी । राष्ट्र के भविष्य के प्रति कितनी आस्था और भावी गौरव के प्रति अभिमान था। उसका सपना चूर-चूर हो गया जिससे मर्माहित होकर कवि कह उठा -

वृद्धि पर है कर, मगर कल-कारखानें भी बढ़े हैं ।
हम प्रगति की राह पर हैं, कह रहा ह संसार है ।

किन्तु चोरी बढ़ रही इतनी कि अब कहना कठिन है ।देश अपना स्वस्थ या बीमार है ।[५५] वैसे देखा जाय तो यह अनुभूति कवि दिनकर की नहीं, अपितु भारत के प्रत्येक विचारक की है ।

देश के जन-जन में व्याप्त विषमता, शोषण, दीन-हीन कृषकों का अभावग्रस्त जीवन आदि पर लिखी गयी अनेक कविताओं पर पूर्ववर्ती विवेचन के अंतर्गत विचार किया जा चुका है । उनके अतिरिक्त `वन फूलों की ओर`, `हाहाकार`, विपथगा, आदि कविताओं में वे संवेदनाएं पूर्णरूप से उभरकर प्रस्तुत हुई हैं ।

कवि देश की सामाजिक-आर्थिक दशा से बहुत चिन्तित है। वह सोचता है

UNIVERSITY LIBRARY
M. S. UNIVERSITY OF BARODA

इस विषमता से पता नहीं कितने होनहार युवकों की जिन्दगी मिट्टी में मिल जाएगी। कवि को इस दुरवस्था के प्रति मात्र संवेदना ही नहीं है। अपितु वे इस बात से भी चिन्तित हैं कि युवकों की कार्यशक्ति का उपयोग देश-निर्माण के लिए नहीं हो पा रहा है तथा उन्हें समुचित न्याय-भावना भी नहीं मिल पा रहा है।

क्या होगा भगवान, हाल मिट्टी में पड़ी जवानी का ?
इस किशोर खिलती ज्वाला का, इस चढ़ते से पानी का ।। [५६]

उपर्युक्त प्रश्न उठाकर वह आस्थावान होकर दुर्गा, भवानी को स्मरण कर उनसे अनुरोध करता है कि इस धरती के रेत में वे पुन: युवकों में वीरता की शक्ति का संचरण करें। जिससे जीवन की शिथिलता और निष्क्रियता समाप्त हो तथा तेजोदीप्त आभा का उदय हो। [५७]

जन-ताप और पीड़ा से कवि उद्विग्न है। वह जब तक जन-जन के ताप को, पीड़ा को, मन की जलन को दूर नहीं कर लेता, तब तक उसे विश्राम ~~कहाँ~~ कहाँ ?

जनता की छाती भिंदे और तुम नींद करो।
अपने भर तो यह जुल्म नहीं होने दूंगा।
तुम बुरा कहो या भला, मुझे परवाह नहीं।
पर, भरी दोपहरी में तुम्हें नहीं सोने दूंगा। [५८]

कवि को विश्वास था कि स्वतंत्रता के उदय के साथ-साथ जनता की दशा सुधरेगी। झोपड़ियों में मंगल-दीप जलेंगे। पर कवि अपनी आँखों से राजनीति के कुचक्र में राष्ट्रीय विकास के स्वप्नों को चूर्ण-विचूर्ण होते देखता है और उसका हृदय दु:खी

हो उठता है । उसकी हृदय-वीणा के तार बिखर जाते हैं तथा कवि को गहन निराशा के अंधकार में सब कुछ अर्थहीन लगने लगता है । इससे वह आधुनिक शासन पर विद्रूप व्यंग्य करते हुए कहता है -

राजा !
तुम्हारे अस्तबल के घोडे मोटे हैं ।
प्रजा भूखी और नंगी है ।
घोड़ों को कोई अभाव नहीं ।
लेकिन लोगों को हर तरह की तंगी है ।[५६]

इससे स्पष्ट है कि कवि की दृष्टि इस विषय में रचनात्मक है, विध्वंसात्मक नहीं । युवकोचित आक्रोश, क्रोध या विद्रोह उसकी निजी प्रकृति के रूप में इन कविताओं में अवश्य परिलक्षित होती है, किन्तु वह व्यंग्य भी रचनात्मक सोद्देश्यता को लिए हुए है। इसीलिए वह न्यायोचित स्थिति के प्रति आस्थावान होकर कहता है -

पढ़ो सामने के अक्षर क्या कहते हैं ये ।
विनय विफल हो जहाँ, वाण लेना पड़ता है ।
स्वेच्छा से जो न्याय नहीं देता है, उसको
एक रोज आखिर देना पड़ता है ।[६०]

मूल्यांकन :

भारत नाम से जो भी आस्तिकता, आध्यात्मिकता, तपस्या, बलिदान, शक्ति और शूरता तथा परमार्थ और पुरुषार्थ की व्यंजना होती है । दिनकर के

काव्य के वे ही आधार हैं । दिनकर ने छायावाद से वैयक्तिकता, रोमाण्टिकसिज्म तथा अभिव्यक्ति शैली के कुछ अंश लिये हैं, प्रगतिवाद से कोलाहल, गति और - सामयिकता के कुछ अंश ग्रहण किये । दिनकर की कविता में दोनों का मिश्रण दिखायी देता है । इस कवि की कला सीपी से निकले हुए मोती की तरह समाज की मिट्टी से उद्भूत एक सुन्दर लता के सदृश है, जिसने शून्य में विकास पाया है । उसमें मिट्टी की सी गंध व्याप्त है । लोक-जीवन की बांसुरी है ।[६१] उनकी समस्त काव्य जागृति, उत्साह, साहस बल और तेज को बिखेरता आगे बढ़ता है । उसका सम्बंध जन-जीवन से उतना ही घनिष्ट है, जितना दृश्य जगत से । प्रो० शिवबालक राय का यह कथन उनके उपयुक्त प्रतीत होता है - 'उसकी कविताओं का मनुष्य शक्ति संपन्न सामर्थ्यवान होता है । वह संघर्षों से घबराता नहीं । जटिलताओं से ऊबता नहीं, बल्कि संघर्षों से उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है उसमें पुष्टि आती है । दिनकर हिंदी के नये युग के प्रथम कवि हैं । जिन्होंने मनुष्यों में सदा आशा की ज्योति भरी और देखी है । निराशा के अंधकार को पास नहीं आने दिया । उन्होंने मनुष्य का ईमानदारी पूर्वक एक सबल युगद्रष्टा की भाँति अध्ययन किया है । उनकी कमजोरियों की नब्ज टटोली है । सबलताओं की पहचान की है । उसके सच्चे विकास का अंदाज देखा है और प्रगति के बोझिल पग देखे हैं, साथ ही प्रगति का अर्ह परखा है ।[६२]

किसी कवि का काव्य उसकी व्यष्टि-संस्कृति क तथा उसके सहारे युगीन संस्कृति या परिवेश की देन होता है । इसे दूसरे शब्दों में कहा जाय कि निजी संस्कारों के सूक्ष्म तत्त्व सामूहिक-चेतना को अभिव्यक्त करते हुए रूपाकार पाते हैं । दिनकर की सामाजिक-चेतना वस्तुत: उनके जन-जन के प्रति संवेदनशीलता की विशेषता के कारण निजी-अध्ययन, चिन्तन-मनन तथा संस्कार-समष्टि की पार्श्ववर्ती परिवेश

के प्रति प्रतिक्रिया कही जा सकती है। इस प्रतिक्रिया में विस्फोट या तोड़-फोड़ की प्रवृत्ति न होकर जो आक्रोश मिलता है। वह रचनात्मक तथा नवजागरण का विधायक है। उनके काव्य में सामाजिक और आर्थिक चेतना की अभिव्यक्ति से सम्बंधित पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन के आधार पर हम उपर्युक्त निष्कर्ष पर सरलता से पहुंच सकते हैं।

संघर्ष व यथार्थ की कविताएँ लिखना प्रत्येक कवि के लिए संभव नहीं, जब तक कि वह उस परिवेश को आत्मसात न कर ले। यदि कहीं कवि कुछ लिख भी लेता है तो उसकी कविताओं से वह व्यथा प्रकट नहीं होती है। जो कि उक्त परिवेश व संघर्षों में जीनेवाले कवि के काव्य से। दिनकर ऐसे ही कवि हैं, जो समाज की विभीषिकाओं से जुड़े हुए थे। उन्होंने स्वयं लिखा है -'साधना एवं संघर्ष का मार्ग साहित्य का सबसे उन्नत एवं कठोर मार्ग है। कवि के लिए कोमल कल्पना की आराधना पर्याप्त नहीं होती। उसे संघर्षशील जीवन के बीच प्रविष्ट होकर मनुष्य की अधिक मनोदशाओं का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। मेरा आग्रह यह नहीं कि कवि अपने हाथ की बाँसुरी फेंककर तलवार या राजनीति की पताका उठा ले। साहित्य न तो केवल मिट्टी है, न आकाश। वह ऐसा ईथर है, जो धरती के ऊपर छाया रहता है। कवि अगर अपने युग में आदर पाना चाहता है तो उसे अपने आस-पास की घटनाओं का ख्याल रखना ही पड़ेगा।[६३] कवि का यह कथन भी हमारे उपर्युक्त निष्कर्षों से साम्य रखता है।

तृतीयत: यह उल्लेखनीय है कि कवि की कृतियों में जहाँ कहीं भी विषमता के चित्र अंकित हुए हैं, वह आक्रोश-प्रधान है। कवि ने देशवासियों को शोषण, विषमता, असमानता, अन्याय का विरोध करने की प्रेरणा दी है। अन्यायियों, अत्याचारियों, शोषकों को कड़ी चेतावनी दी है, कवि की आस्था सुधारवादी दृष्टिकोण की नहीं अपितु, सामूल परिवर्तन की है। क्रांति के माध्यम से ही वह

सामाजिक विप्लव कर एक समृद्ध व सुखी राज्य की आकांक्षा करता है । इसका एक दूसरा पक्ष यह भी है कि यह स्थिति पूर्ववर्ती नव-जागरण के बावजूद भी समाज में विद्यमान है । और यही उनके आक्रोश का भी कारण है । दिनकर के काव्यों में सामाजिक जागरण के जो स्वर मिलते हैं वे स्थूलत: विस्तृत न होते हुए भी संवेदना के स्तर पर व्यापक कहे जा सकते हैं और अर्थ के सुविनिमय पर नये युग को खड़ा करना चाहते हैं । जहाँ `दिनकर ` ने `रश्मिरथी` में भारतीय समाज को जातिवाद वर्गवाद से ऊपर उठाकर मानवतावाद के वास्तविक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का सुप्रयास किया है, वहाँ उसने पूंजीवाद व साम्यवाद दोनों का समन्वय-परिष्कार कर भारतीय संस्कृति के अनुरूप एक ऐसे अर्थवाद को जन्म दिया है । जो विश्व को बिना किसी द्वेषाग्नि के अनायास ही आर्थिक समानता की ओर ले जाने के संकल्प का परिचायक है । इस प्रकार दिनकर के काव्यों में मानवतावाद को लिए हुए वह यथार्थवाद है जिसमें समाज कल्याण तथा क्षात्र-धर्म दोनों परिष्कृत रूप में झलकते हैं । अत: यह कहा जा सकता है कि दिनकर युग-धर्म का वह गायक है , जिसके स्वर में युग-युग से पीड़ित तथा प्रताड़ित राष्ट्रीयता उग्र चेतना के साथ अनुप्राणित हो उठी हैं । जो कि परवर्ती अध्याय का विषय है । उनकी उपर्युक्त सामाजिक चेतना का सशक्त प्रमाण उनकी पुस्तक `मिट्टी की ओर ` में इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है -

`युगों के दर्पण में कविता-कामिनी का अपार्थिव रूप देखकर शून्य में पंख खोलकर उड़ने की इच्छा जरूर हुई, परन्तु देश की अपमानित मिट्टी का प्रभाव कहिए या मेरा अपना भाग्य दोष ह कि कल्पना के नन्दन-कानन में भी मिट्टी की गंध मेरा पीछा नहीं छोड़ सकी । देश माता का शस्य-श्यामल आँचल, सिर्फ इसलिए सुन्दर नहीं लगा चूंकि उसमें प्राकृतिक सुषमा निखर रही है, वरन् इसलिए भी कि

उसके साथ भारतीय किसानों का श्रम उनकी आशा और अभिलाषाएं भी लिपटी हुई हैं।"[६४] संभवत: इसी कारण उनकी समस्त चेतना गाँव के जनता- जनार्दन के बीच उभरी। यही कारण है कि वह 'दिल्ली' के महलों की रेशमी सरासराहट व सुगन्धों के बीच रहकर भी गांव में रहने वाले अर्धनग्न किसान, दीन व मजदूरों के पसीनों की गन्ध की मर्मान्तिक पीड़ा की सफल अभिव्यक्ति कर पाये हैं।

--

सन्दर्भ :

१- दिनकर , बापू, पृष्ठ- १४
२- दिनकर, रश्मिलोक, भूमिका(द)
३- डा० रामशिरोमणि होरिल, आधुनिक हिंदी काव्य में रूप वर्णन,
प्रगतिवाद युग, पृ० ३०६
४- डा० संतोषकुमार तिवारी, छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना,पृ०२१३
५- दिनकर, रेणुका, पृ० ३२
६- दिनकर, हुंकार, पृ० २०
७- डा० प्रतिमा जैन, दिनकर: काव्य, कला और दर्शन, पृ० २०६
८- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, विचार और वितर्क, पृ० ६६
९- दिनकर, रश्मिरथी, पृ०
१०- ,, ,, पृ० ४-५
११- ,, ,, पृ० १
१२- दिनकर, सर्प सीपी और शंख, पृ० ६५-६७
१३- ,, ,, पृ० ६८
१४- दिनकर, रेणुका, पृ० १८
१५- वही, पृष्ठ- वही
१६- दिनकर, रेणुका, पृ० वही ।
१७- वही, हुंकार, पृ० ३४
१८- दिनकर, नीलकुसुम, पृ० ६४
१९- दिनकर, इतिहास के आंसू, पृ० ६८
२०- दिनकर, वही, पृ० ६६
२१- दिनकर, हुंकार, पृ० ७०-७१
२२- दिनकर, बापू, पृ० १८

२३- दिनकर, पृ०, वही ।

२४- दिनकर, सामधेनी, पृ० २६

२५- दिनकर, नीलकुसुम, पृष्ठ-३६

२६- दिनकर, दिल्ली, पृ० १४

२७- वही, पृ० १६

२८- वही, पृ० १६

२९- वही, पृ० २१-२२

३०- वही, पृ० २३

३१- वही, पृष्ठ- वही ।

३२- वही, पृष्ठ-४

३३- दिनकर, परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० ७५
पढ़ो सामने के अक्षर क्या कहते हैं -----

३४- दिनकर, नीलकुसुम, पृ० ८६

३५- वही, पृ० ६०

३६- वही, दूसरा स्वर, पृ० १०७

३७- दिनकर, परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० ३०

३८- दिनकर, दिनकर की सूक्तियाँ, पृ० ६२

३९- दिनकर, हुंकार, पृ० २२

४०- वही, द्रष्टव्य, पृष्ठ-वही ।

४१- द्रष्टव्य, वही, पृ० ३३

४२- दिनकर, विपथगा, पृ० ७३

४३- द्रष्टव्य, वही, पृ० ७७

४४- द्रष्टव्य, नीलकुसुम, पृ० ७६-८०

४५- दिनकर, परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० ३०

४६- दिनकर, इतिहास के आँसू, पृ० ४६
४७- विस्तृत वर्णन के लिए द्रष्टव्य, हुंकार पृ० ७३-७४
४८- दिनकर, चक्रवाल, पृ० २३१-२३२
४६- द्रष्टव्य, वही, धूप और छाँह, पृ० २६-३०
५०- दिनकर, सामधेनी, पृ० ६६
५१- वही, रेणुका, पृ० ३
५२- वही, द्रष्टव्य, पृ० वही ।
५३- वही, रेणुका, पृ० ५
५४- वही, परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० ६८
५५- वही, नए सुभाषित, पृ० ४०
५६- वही, हुंकार, पृ० ५२
५७- वही, पृष्ठ-वही ।
५८- दिनकर, नीलकुसुम, पृ० ६०
५६- दिनकर, प्रणभंग तथा अन्य कविताएँ, पृ० १२८
६०- दिनकर, परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० ७५
६१- कामेश्वर शर्मा, दिग्भ्रमित राष्ट्र कवि, पृ० १६
६२- प्रो० शिवबालक राय, दिनकर, पृ० ४५
६३- दिनकर, मिट्टी की ओर, शीर्षक कला में सोद्देश्यता, पृ० १०२
६४- द्रष्टव्य, वही, पृ० १०५